संवैधानिक दृष्टि से अस्वीकार्य फैसला

चर्चा में क्यों ?

- हाल ही में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के एक फैसले ने पुलिस उत्पीड़न से सुरक्षा के लिए लिव-इन रिलेशनशिप में रहने वाले एक अंतर-धार्मिक जोड़े की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया है, जो चर्चा का विषय बन गया है। **किरण रावत बनाम यूपी राज्य** का फैसला व्यक्तिगत संबंधों में संवैधानिक नैतिकता के विचार को नकारता है, जिसकी भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने बार-बार पुष्टि की है।
- संवैधानिक निर्णय की आड़ में, अदालत ने केवल विवाह और नैतिकता पर पारंपरिक मान्यताओं को दोहराने की कोशिश की है।

प्रमुख बिंदु

- हाईकोर्ट का फैसला संवैधानिक दृष्टि से अस्वीकार्य है क्योंकि अदालत व्यक्तिगत स्वायत्तता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर संवैधानिक सिद्धांतों के बजाय पारंपरिक सामाजिक नैतिकता की धारणाओं से प्रभावित है।
- इस प्रक्रिया में, अदालत ने सुप्रीम कोर्ट के कई फैसलों को उद्धृत करने के बाद भी, अस्थिर कारण बताकर प्रार्थना को खारिज कर दिया।
- उच्च न्यायालय ने विवाह पर व्यक्तिगत कानूनों पर भरोसा किया, जो अप्रासंगिक थे।

इलाहाबाद कोर्ट का फैसला

- हालिया इलाहाबाद के फैसले के अनुसार डी. वेलुसामी (2010), इंद्र सरमा (2013) और धनु लाल (2015) जैसे लिव-इन रिश्तों पर सुप्रीम कोर्ट के फैसलों का उद्देश्य "ऐसे रिश्तों को बढ़ावा देना" नहीं था और यह कानून परंपरागत रूप से विवाह के पक्ष में था।
- इस प्रकार, उच्च न्यायालय ने अनिवार्य रूप से शीर्ष अदालत के फैसलों के पूर्ववर्ती मूल्य को खारिज कर दिया। उच्च न्यायालय ने आपराधिक प्रक्रिया संहिता (CrPC) की धारा 125 का भी अनावश्यक संदर्भ दिया जो पत्नियों (और "अन्य महिलाओं" के लिए नहीं) के लिए भरण-पोषण की बात करती है।

- हाई कोर्ट के अनुसार मुस्लिम कानून के तहत विवाहेतर और विवाह पूर्व यौन संबंध को मान्यता नहीं दी गई है, यहाँ तक कि "यौन, कामुक, स्नेहपूर्ण कृत्य; जैसे- चुंबन, स्पर्श, घूरना आदि के संदर्भ में फैसले में कहा गया है कि शादी से पहले यह विवाहेतर सम्बन्ध बनाना इस्लाम में 'हराम' है।

रूढ़िवाद की ओर झुकाव

- हालाँकि उच्च न्यायालय यह नहीं मान सकता था कि विवाह संवैधानिक संरक्षण और मौलिक अधिकारों के प्रयोग के लिए एक शर्त है।
- वास्तव में, कोर्ट ने एक धार्मिक न्यायालय के रूप में कार्य किया, जैसे कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता और स्वायत्तता का विचार रिट क्षेत्राधिकार से अलग हो।
- यह फैसला सामाजिक रूढ़िवादिता और धार्मिक पुनरुत्थानवाद के प्रति स्पष्ट झुकाव को दर्शाता है। संवैधानिक निर्णय की आड में न्यायालय ने केवल विवाह और नैतिकता पर पारंपरिक मान्यताओं को दोहराने की कोशिश की।
- मौलिक अधिकारों पर सर्वोच्च न्यायालय का फैसला केवल अंतर-पक्षीय विवादों का निर्णय नहीं हैं, जैसा कि उच्च न्यायालय ने गलत कल्पना की है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून संविधान के **अनुच्छेद 141** के अनुसार देश की सभी अदालतों पर **बाध्यकारी** है। संवैधानिक निर्णय की प्रक्रिया में, शीर्ष अदालत किसी भी सामाजिक प्रथा या मानवीय आचरण को 'प्रोत्साहित' या हतोत्साहित नहीं कर रही है।
- उदाहरण के लिए, **जोसेफ शाइन बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (2018)** मामले में, न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता (IPC) की **धारा 497** के तहत परिभाषित व्यभिचार को अपराध की श्रेणी से हटा दिया। इसमें राज्य की पुलिस शक्ति का उपयोग व्यक्तिगत नैतिक विचलनों को दंडित करने के लिए नहीं किया जा सकता है।
- **नवतेज सिंह जौहर वाद (2018)** में, समलैंगिक संबंधों से संबंधित IPC की धारा 377 को रद्द करते हुए, सुप्रीम कोर्ट ने केवल नैतिक निर्णय के बजाय एक संवैधानिक निर्णय दिया है। इन निर्णयों का उदारवादी मूल्य व्यक्तिगत विकल्पों के दायरे में राज्य की शक्ति को सीमित करने की उनकी क्षमता में निहित है।

व्यक्तिगत स्वतंत्रता को कायम रखना

- सुप्रीम कोर्ट के फैसले, जिनका हवाला इलाहाबाद के फैसले में दिया गया है, ने भी व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बरकरार रखा और उस संबंध में कानून बनाया।
- **लता सिंह वाद (2006)** में, न्यायालय ने देश भर के पुलिस अधिकारियों को यह सुनिश्चित करने का निर्देश दिया कि अंतरजातीय या अंतरधार्मिक विवाह करने वाले किसी भी वयस्क को किसी के द्वारा परेशान न किया जाए।
- **S खुशबू बनाम कन्नियाम्मल और अन्य (2010)** में , सुप्रीम कोर्ट के अनुसार कहा गया कि- यह सच है कि हमारे समाज में मुख्यधारा का दृष्टिकोण यह है कि यौन संपर्क केवल वैवाहिक दम्पत्तियों के बीच ही होना चाहिए, लेकिन जब वयस्क स्वेच्छा से बाहर यौन संबंध बनाते हैं तो यह कोई वैधानिक अपराध नहीं होता है।

- लेकिन इलाहाबाद हाई कोर्ट के अनुसार, इन फैसलों में सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणियाँ संबंधित मामलों के तथ्यों के संदर्भ में की गई थीं। प्रत्येक मामले के तथ्य एक-दूसरे से भिन्न होंगे और तथ्यों पर मिसाल नहीं हो सकती। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि उच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों के प्रश्नों पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के प्रस्ताव की अवहेलना कर सकता है।

आगे की राह

- इलाहाबाद मामले में याचिकाकर्त्ताओं ने केवल पुलिस द्वारा प्रताड़ित न किए जाने के अपने अधिकार का दावा किया और साथ रहने के अपने फैसले के नैतिक मूल्यांकन के लिए प्रार्थना नहीं की।
- उच्च न्यायालय को यदि आवश्यक हो, तो अतिरिक्त विवरण मांगना चाहिए था और विवाह पर व्यक्तिगत कानूनों का अवांछित और अप्रासंगिक सर्वेक्षण किए बिना जोड़े के मौलिक अधिकार का समर्थन करना चाहिए था।
- यह कहना कि व्यक्तिगत कानूनों का नैतिक पाठ संवैधानिक सिद्धांतों का स्थान ले लेगा, एक गंभीर न्यायिक दुर्घटना है। यह निर्णय न्यायिक अनुशासनहीनता का एक बड़ा मामला है, उम्मीद है कि सुप्रीम कोर्ट इसे यथाशीघ्र ठीक करेगा।